मगसिर शुक्ल २, रविवार, दिनांक १५-१२-१९७४, श्लोक-२, प्रवचन-५

दूसरी गाथा। यहाँ अरिहन्त को नमस्कार पहले किया है न। दूसरी गाथा में। पहली गाथा में सिद्ध को किया। वे अरिहन्त तीर्थंकर हैं। ऐसे सामान्य केवली भी होते हैं, परन्तु यहाँ तीर्थंकर की मुख्यता से, वाणी निकलती है न उनकी, इस अपेक्षा से।

भावार्थ - जो तीर्थंकर हैं, शिव हैं,.... पूर्ण कल्याणस्वरूप जिन्हें प्रगट हुआ है। परमात्मदशा को यहाँ शिव कहते हैं। विधाता हैं। वे धर्म के धरनेवाले हैं, रचनेवाले हैं। तीर्थ के भी रचनेवाले हैं, ऐसा कहा जाता है। निमित्त से कहा जाता है। इस अपेक्षा से **विधाता है, सुगत है,....** वे सुगत। अपनी जो आनन्द और ज्ञान की दशा जिन्हें पूर्ण प्राप्त हो गयी है, इसलिए उन्हें सुगत कहा जाता है। **विष्णु हैं....** लोक-अलोक को जानने की शक्ति धरते हैं, इसलिए मानो लोक-अलोक में व्यापक हो, जानने की अपेक्षा से। व्यापक तो अपने असंख्य प्रदेश में हैं। परन्तु जानने का तीन काल-तीन लोक है, इस अपेक्षा से उन्हें सर्व व्यापक विष्णु अरिहन्त को ही कहा जाता है। और **समवसरणादि वैभवसहित हैं....** उन्हें यहाँ लेना है न? सामान्य केवली है, उनकी यहाँ बात नहीं लेनी। इसलिए यहाँ तीर्थंकर है, ऐसा कहा न? **समवसरणादि वैभवसहित हैं....** जिनके पुण्य की हद है, बेहद है। आहाहा! ऐसी जिन्हें संयोगरूप से विभूति है, ऐसा कहा जाता है। उनकी विभूति तो अनन्त ज्ञान और दर्शन है परन्तु पुण्य का संयोग का वैभव भी अपार समवसरण आदि ऋद्धि है।

और भव्यजीवों को कल्याणरूप जिनकी दिव्यवाणी.... भव्य जीवों को, योग्य जीवों को कल्याणरूप जिनकी दिव्यवाणी, **(दिव्यध्वनि) मुख से नहीं, किन्तु सर्वांग से...** भगवान की वाणी मुख से नहीं निकलती। सर्वांग—पूरे शरीर में से ॐ ऐसी ध्वनि उठती है। तालु, होठ हिले बिना, इच्छा बिना वाणी की ध्वनि वाणी के कारण से निकलती है। **और जयवन्त वर्तती है, उन सशरीर शुद्धात्मा को,....** वह वाणी होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जब-जब तीर्थंकर होते हैं, तब-तब उन्हें वाणी होती है, वह जयवन्त वर्तते हैं। **सशरीर शुद्धात्मा को,....** ऐसे जो अरिहन्त भगवान शरीरसहित होने

पर भी शुद्धात्मा पवित्र पूर्ण आनन्द है। **अर्थात् जीवनमुक्त....** है। आयुष्य होने पर भी वे मुक्त हैं। जीवन—यह अन्तर में आनन्द की दशा जो स्वभाव था, अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान, वह दशा प्रगट हो गयी है। अर्थात् आयुष्य के कारण जीवन होने पर भी उससे मुक्त हैं। आहाहा! उन **अरहन्त परमाात्मा को यहाँ नमस्कार किया है।** ऐसे भगवान को पहिचानकर नमस्कार किया है। **यह भी माङ्गलिक श्लोक है।** पहले जैसे मांगलिक श्लोक था न पहला? वैसे यह भी मांगलिक श्लोक है। **इसमें ग्रन्थकार ने श्री अरहन्त परमात्मा....** अरहन्त शब्द प्रयोग किया है। **और उनकी दिव्यध्वनि को...** दिव्यध्वनि को **नमस्कार किया है।**

श्री अरहन्तदेव कैसे हैं?

तालु, ओष्ठ आदि की क्रियारहित और इच्छारहित उनकी वाणी जयवन्त वर्तती है। अर्थात् कि उन्हें वाणी होती है। इच्छा नहीं, तालु और होठ हिलते नहीं, तथापि वाणी होती है। आहाहा! **वे तीर्थ के कर्ता हैं,...** विधाता कहा था न? साधु, आर्यिका, श्रावक और श्राविका अथवा साधु के ही चार प्रकार हैं। उनके वे कर्ता हैं। साधु, अणगार, यति और ऋषि, ऐसे मुनि के भी चार प्रकार हैं।

अर्थात् जीवों को मोक्ष का मार्ग बतलानेवाले हैं-हितोपदेशी हैं;.... वह तो आत्मा का हित का ही उपदेश करनेवाले हैं, ऐसा कहते हैं। जिनकी वाणी में भगवान पूर्णानन्द शुद्ध स्वरूप की ओर झुकना और संयोगी चीज़, राग और पर्याय से हट जाना, ऐसा जिनका-भगवान का हितोपदेश है। आहाहा! उसमें हित है। स्वभाव सन्मुख होना। निमित्त, राग और पर्याय से हटकर वहाँ जाना। ऐसा ही भगवान का उपदेश है, वह हितोपदेश कहा जाता है। आहाहा! जिसमें आत्मा का मोक्ष और मोक्ष का मार्ग प्रगट होता है, वह हित है। उस हित का ही उपदेश भगवान ने किया है। आहाहा! क्योंकि उनकी वाणी का सार वीतरागता है। अर्थात् उन्होंने वीतरागता होने का ही उपदेश किया है। आहाहा! पूर्ण स्वरूप आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप, वीतरागस्वरूप आत्मा, उसकी ओर की एकाग्रता के झुकाववाली ही दशा की है। आहाहा! लाख बात की हो तो भी वह आत्मा के ओर की सन्मुख दशा और सन्मुख स्थिरता—यह भगवान का उपदेश है।

समझ में आया ? उसमें ही हित है। भगवान आत्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यस्वरूप की ओर का झुकाव, वही हित का मार्ग है। समझ में आया ?

भगवान के उपदेश में तो ऐसा आया कि परद्रव्य सन्मुख के झुकाव में तो राग होता है, दुर्गति होती है, ऐसा कहते हैं। वाणी ऐसा कहे, हमारी ओर के झुकाव में राग है। वह चैतन्य की गति नहीं—वह चैतन्य की जाति नहीं। ऐसा वीतराग का उपदेश है। अन्तर स्वरूप भगवान पूर्णानन्द स्वरूप है। आहाहा! उसकी ओर देख, वहाँ जा। वहाँ से तुझे हित का मार्ग प्रगट होगा। ऐसा भगवान का उपदेश हितोपदेश है। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा है न ? सर्वज्ञ हैं, हितोपदेशी हैं। समझ में आया ? वीतरागता का उपदेश करनेवाले हैं। आहाहा!

मोह के अभाव के कारण, उनके किसी भी प्रकार की इच्छा शेष नहीं रही,.... कोई इच्छा मात्र रही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मैं धर्म को समझाऊँ तो समझे, तो वहाँ कुछ उसे लाभ हो, ऐसी इच्छा मात्र जिन्हें नहीं है। आहाहा! **अर्थात् वे वीतरागी हैं और ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मों का नाश होने से, उनके अनन्त ज्ञानादि गुण प्रगट हुए हैं,....** आत्मा ऐसा है, ऐसा वे कहते हैं। ऐसा उन्हें प्रगट हुआ है। आहाहा! **अर्थात् वे 'सर्वज्ञ' हैं।** देखा न! हितोपदेशी कहा और सर्वज्ञ है, ऐसा।

तथा वे शिव हैं, धाता हैं, सुगत हैं, विष्णु हैं, जिन हैं और सकलात्मा हैं... शरीरसहित परमात्मा शुद्ध हैं। **ये सब उनके गुणवाचक नाम हैं।** आहाहा! इसलिए कहा है न, जो अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने कि आत्मा की ऐसी दशा, आत्मा का स्वरूप ही ऐसा है। वह अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने। वह जाननेवाला फिर अपनी और ढले। पर को जाने, तब तक तो विकल्प है। समझ में आया ? **'जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं सो जाणदि अप्पाणं।'** इसका अर्थ—ऐसी आत्मा की दशा पूर्ण वह स्वरूप में शक्तिरूप थी, उसका शक्तिरूप स्वभाव ही पूर्ण वीतराग, पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण प्रभुता, पूर्ण स्वच्छता—ऐसे प्रत्येक गुण से वे परिपूर्ण थे। तो थे, उसमें से परिपूर्ण पर्याय प्रगट की। समझ में आया ? इसलिए उनके गुणवाचक नामक (कहे)। भगवान की वाणी अब कहनी है। यह भगवान वर्णन किये। आहाहा! छोटाभाई ने मेहनत बहुत की है, मिलानकर।

वह दिव्यवाणी है,.... दिव्यवाणी है। दिव्यवचन है न। दिव्यध्वनि। दिव्यध्वनि कहो या दिव्यवाणी कहो। दिव्य अलौकिक अचिन्त्य जिसकी वाणी है, कहते हैं। आहाहा! **जो भगवान के सर्वांग से बिना इच्छा के छूटती है,...** इच्छा बिना पूरे आत्मा से ॐ की ध्वनि उठती है। **सर्व प्राणियों की हितरूप है....** वह वाणी प्रत्येक प्राणी को हितरूप है। ऐसा कहा है न कि हितरूप है तो असंज्ञी प्राणी को हितरूप कैसे? तब कहते हैं, उन्हें नहीं घात करने का उपदेश दिया है, वह हितरूप है। मोक्षमार्गप्रकाशक में भाई ने लिया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में। सर्व को हितरूप है तो असंज्ञी प्राणी आदि जो हैं, वे एकेन्द्रिय हैं, उन्हें कहाँ हितरूप उनकी वाणी हुई? तो उसका अर्थ इतना कि उन्हें दुःख नहीं देना, उन्हें नहीं मारना, उसे स्वभाव सन्मुख हुआ, इसलिए पर को मारने का विकल्प नहीं होता, ऐसा भगवान ने उपदेश दिया है। समझ में आया? आहाहा! **और निरक्षरी है।** ॐ ध्वनि है न, वह ॐ ध्वनि एक अक्षरी कहलाती है। निरक्षरी। एक अक्षरी कहो या दूसरे शब्द नहीं, इसलिए निरक्षरी।

तथा भगवान की दिव्यध्वनि को देव, मनुष्य, तिर्यञ्चादि सर्व जीव अपनी-अपनी भाषा में अपने ज्ञान की योग्यतानुसार समझते हैं। आहाहा! ऐसी अस्ति सर्वज्ञ की और उनकी वाणी की ऐसी अस्ति जयवन्त वर्तती है, ऐसा कहकर यह कहा। समझ में आया? उसकी जिसे प्रतीति हो.... आहाहा! वह प्रतीति तो स्वभाव सन्मुख हो तो ही होती है। समझ में आया? जिसमें पूर्णता पड़ी है, पूर्णता की प्रतीति और उसकी पूर्ण वाणी की प्रतीति। बात तो यह है कि अन्दर पूर्ण स्वभाव सन्मुख ढले, तब उसकी प्रतीति होती है। अपने पूर्ण स्वभाव की प्रतीति (हो), उसे दूसरे पूर्ण स्वभाव और उसकी पूर्ण वाणी दिव्य, उसकी प्रतीति उसे होती है। आहाहा! समझ में आया?

उस निरक्षर ध्वनि को 'ओंकारध्वनि' कहते हैं। 'ॐकार ध्वनि सुणि अर्थ गणधर....' क्या कहा फिर? 'ॐकार ध्वनि सुणि अर्थ गणधर विचारे....' आहाहा! वह वाणी और वह भगवान का दरबार, यह समुदाय जहाँ .... आहाहा! कहते हैं, **निरक्षर ध्वनि को 'ओंकारध्वनि' कहते हैं।** पूरे सर्वांग असंख्य प्रदेश से उठती ध्वनि है। प्रदेश में से नहीं। असंख्य प्रदेश भगवान आत्मा के, उसमें से नहीं परन्तु उनके समीप

में से ध्वनि–वाणी उठती है। आहाहा! यह निरक्षरी की व्याख्या की। गोम्मटसार का आधार दिया है। गोम्मटसार में है।

श्रोताओं के कर्ण प्रदेश तक वह ध्वनि न पहुँचे, वहाँ तक वह अनक्षर ही है.... यह है गोम्मटसार में। नीचे दिया है। **जीवकाण्ड गाथा २२७ की टीका में है।** क्या? कि निरक्षरी वाणी कहाँ तक? कि कान में न पहुँचे, वहाँ तक। है, यह पाठ है। गोम्मटसार में पाठ है। **और जब तक श्रोताओं के कर्ण में प्राप्त होती है (पहुँचती है), तब अक्षररूप होती है।** क्योंकि वे अक्षररूप से समझते हैं न? इसलिए वाणी अक्षररूप तब होती है, ऐसा कहते हैं। गोम्मटसार में पाठ है। यह चर्चा हो गयी है पहले। समझ में आया?

ॐ ऐसी ध्वनि उठी, उस ध्वनि का एकाक्षरीपना कहाँ तक है? इसलिए कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि भाई! यह एकाक्षरी ध्वनि नहीं। अक्षरसहित ध्वनि होती है। क्योंकि समझनेवाले अक्षरसहित समझते हैं। इसलिए ध्वनि में भी अक्षरपना आता है। वह पहुँचे कान में, तब अक्षररूप हो जाती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात, भाई! आहाहा! यह गोम्मटसार की गाथा में आता है। २२७ की टीका।

जैसे.... यहाँ मोक्षमार्ग का दृष्टान्त दिया है। मोक्षमार्गप्रकाशक है न? गुजराती आवृत्ति पृष्ठ २०–२१। उसका आधार दिया है। **.....जैसे, सूर्य की ऐसी इच्छा नहीं है....** सूर्य को ऐसी इच्छा नहीं **कि मैं मार्ग प्रकाशूँ....** अन्धकार का नाश हो और मार्ग प्रकाशित करूँ, ऐसी सूर्य को इच्छा नहीं है। **किन्तु स्वाभाविक ही उसकी किरणें फैलती हैं,....** सूर्य की स्वाभाविक किरणें विस्तरित होती हैं–फैलती हैं। **जिससे मार्ग का प्रकाशन होता है;....** अन्धकार मिटकर मार्ग में उजाला होता है। मार्ग में उजाला होता है। आहाहा!

उसी प्रकार श्री वीतराग केवली भगवान के ऐसी इच्छा नहीं कि हम मोक्षमार्ग को प्रकाशित करें,.... आहाहा! उसमें तो कहा है मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में आठवें अध्याय में, तीर्थंकर और केवलियों ने भी उपकार किया है। निमित्त से कथन आवे। उपकार किया है। हम भी यह उपकार की बात थोड़ी करेंगे। आठवें अध्याय में है। यह

किया है, वह हो गया है। यह कोई इच्छा नहीं कि मैं इसे मोक्षमार्ग प्राप्त कराऊँ। सूर्य को इच्छा नहीं कि मैं प्रकाश करूँ। है इच्छा? आहाहा! एक-एक तत्त्व की स्पष्टता और उसकी स्थिति की मर्यादा है, ऐसी इसे जानना चाहिए। आहाहा! ऐसे का ऐसा गड़बड़ माने, मिश्र माने तो वह तो वस्तु की विपरीतता हो जाती है। आहाहा!

सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं कि.... पूरी दिव्यध्वनि की आवाज एकाक्षरी खिरी, पश्चात् उसे समझने में अक्षर आ गये। परन्तु उन्हें इच्छा नहीं कि मैं मार्ग को प्रकाशित करूँ। आहाहा! अघातिकर्म के उदय से उनके शरीररूप पुद्गल दिव्यध्वनिरूप परिणमते हैं। ऐसा है, हों! उसमें—मोक्षमार्गप्रकाशक में। वहाँ ऐसा लिखा है। शरीररूप पुद्गल दिव्यध्वनिरूप (परिणमते हैं)। समझे न? भाई! नहीं तो दिव्य शरीररूप पुद्गल तो औदारिक है। परन्तु उस शरीर की जाति के पुद्गल ऐसे जो पुद्गल भाषा के गिनकर (बात की है)। शब्द यही है, ऐसा ही है। मोक्षमार्ग (प्रकाशक में है)। यहाँ तो एक-एक बात में उसकी सत्यता क्या है, यह जानना चाहिए न?

कहते हैं कि इस शरीररूप पुद्गल। अब शरीर जो है, वह तो औदारिकशरीर है। समझे न? उसके पुद्गल जो कुछ निकले, वे कहीं औदारिक शरीर के नहीं, परन्तु उन्हें पुद्गल की जाति बतलाकर **शरीररूप पुद्गल, दिव्यध्वनिरूप परिणमते हैं,....** यह तो मोक्षमार्ग(प्रकाशक) में आया तब ख्याल था सब। समझ में आया? कि इस प्रकार यहाँ कहना चाहते हैं। आहाहा!

जिनसे मोक्षमार्ग का प्रकाशन सहज होता है। जैसे सूर्य को इच्छा नहीं कि अन्धकार दूर करूँ और प्रकाश-उजाला करूँ, तथापि स्वाभाविक प्रकाश होता है; इसलिए अन्धकार नाश होकर प्रकाश होता है। इसी प्रकार भगवान की वाणी, उन्हें इच्छा नहीं कि मैं मोक्षमार्ग प्रकाशित करूँ। आहाहा! गजब बातें परन्तु। वाणी की उसकी अपनी योग्यता ही ऐसी है, कहते हैं। उसमें तो सूर्य की किरणें कही थी। यह वाणी कहीं किरण नहीं है उनकी आत्मा की। दृष्टान्त में तो सूर्य की किरण का दिया था न? वाणी कहीं आत्मा की किरण है? परन्तु संयोग में वाणी की ध्वनि को किरण गिनकर (बात की है)। आहाहा! क्योंकि जैसा वह भाव है, वैसा वाणी में कहने की

ताकत है, इसलिए उस वाणी को भी किरण गिनकर.... आहाहा! दूसरे के धर्म का प्रकाश करते हैं। आहाहा!

एक-एक तत्त्व में जो उसकी स्थिति है, जिस प्रकार से उसका वास्तविक तत्त्व है, उस प्रकार से उसे जानना चाहिए। गड़बड़ करेगा तो कुछ का कुछ एक तत्त्व दूसरे तत्त्व में आ जायेगा। आहाहा! स्वयं भगवान चैतन्यस्वरूप में, कहते हैं कि उसे परद्रव्यरूप मानना.... आहाहा! यह रागरूप मानना, कर्मरूप मानना.... आहाहा! उसे दिव्यध्वनिवाला मानना.... आहाहा! वह भी महामिथ्यात्व का पाप है। ओहोहो! स्वद्रव्य चैतन्यमूर्ति भगवान पूर्णानन्दस्वरूप उसके अतिरिक्त का विकल्प और वाणी आदि या यह पैसे, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देश वे सब मेरे हैं। अरे! उसने परद्रव्य मेरा माना। इसने स्वद्रव्य को नहीं माना। ऐसा भगवान में घोटाला करता है कि यह वाणी भगवान की है और भगवान ने की है।

मुमुक्षु : वह की वह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वह दशा है। अपनी मान्यता इस प्रकार खतौनी करता है। आहाहा!

परमात्मा स्वयं चैतन्यस्वरूप भगवान यह आत्मा, हों! यह बात चलती है। इसे कुछ भी दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प है, उसे विकल्पवाला मानना, वह विकल्प है आस्रवतत्त्व है, परतत्त्व है, उसे ऐसा मानना, यही परद्रव्य को अपना मानकर स्वद्रव्य को चूक गया है। आहाहा! समझ में आया?

उसमें आता है, नहीं? समयसार में (कलश १३७) यह व्रत पालता है, ऐसा करता हो उसे पापी क्यों कहा? आता है न? उसमें भी आया है। शब्दकोश में भी आया है। यह शब्द सब डाले हैं। ऐसा कि व्रत पाले, अहिंसा, ब्रह्मचर्य शरीर से पाले और ऐसे जीव को पापी क्यों कहते हो? ऐसी क्रिया करे—दया की, दान की, व्रत की, तप की, भक्ति की, पूजा की ऐसी क्रिया शुभभाव की; और उसे तुम पापी कहते हो। भाई! पापी कहने का कारण वह राग है, वह परवस्तु है, उसे अपनी मानी, वही मिथ्यात्व का पाप है। आहाहा! वही महान मिथ्यात्व पाप है। महा पाप वह है। ऐसे पाप की नीचता और हल्काई, उसकी इसे खबर नहीं होती और भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप राग और पर

की चीज़रहित, अभावस्वभावस्वरूप, उसकी जो प्रतीति का अनुभव, उसकी क्या कीमत है, इसकी जिसे खबर नहीं, उसे सम्यग्दर्शन की खबर नहीं। समझ में आया? बाह्य त्याग पर उसकी महिमा उसने मानी। बाह्य त्याग किया, स्त्री छोड़ी, पुत्र छोड़े, दुकान छोड़ी, धन्धा छोड़ा। बापू! यह क्या छोड़ा? वह था कब इसमें? उसमें जो था— परवस्तु मेरी, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, उसे तो इसने छोड़ा नहीं। समझ में आया? जो इसमें नहीं, उसे इसमें है ऐसा जो माना है अथवा वह मेरे स्वरूप को जो इसमें नहीं, वह मुझे लाभ करेगा। आहाहा! दया, दान, भक्ति, व्रत, तप का विकल्प है, वह राग है, वह आस्रवतत्त्व है, परतत्त्व है। वह ऐसा पालते होने पर भी इस पर को अपना मानता है.... आहाहा! वही मिथ्यादृष्टि बड़ा पापी है। २००वीं (गाथा) है न? २००-गाथा (के बाद का कलश १३७) समयसार। आहाहा! सावधानरूप से महाव्रत पालन करे, शरीर से ब्रह्मचर्य पाले।

मुमुक्षु : आत्मा को कहाँ पालता है? राग को पालता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर से अर्थात् यह तो जड़ है। जड़ को विषय में नहीं जाने दिया, वह कहीं तेरा कर्तव्य नहीं है। वह तो जड़ का कर्तव्य है कि इस ओर नहीं गया। आहाहा! उसे मैंने रोका है, यही मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! शरीर की मिथ्या मैथुनक्रिया जुड़ान की सम्बन्ध की, वह मैंने नहीं की। वही जड़-रूपी का स्वामी हुआ और मैंने ब्रह्मचर्य पालन किया, वही मिथ्यात्वभाव है। स्वरूपचन्दभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! समझ में आया? यह तो वीतराग मार्ग है, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर ने जिस प्रकाश से मोक्षमार्ग को प्रकाशित किया, उसमें यह विधि है। आहाहा!

यह व्रत को पालन करे अथवा करे.... आहाहा! परन्तु मैंने आज आहार नहीं किया। नहीं करने की वृत्ति हुई, इसलिए आहार नहीं आया, वह भाव ही मिथ्यात्व है। समझ में आया? आहाहा! क्योंकि परद्रव्यसहित मैं हूँ (ऐसा हो) तो परद्रव्य को मैं छोड़ता हूँ। आहाहा! बहुत ही मार्ग सूक्ष्म, भाई! वीतरागमार्ग की दृष्टि.... अभी तो बहुत गड़बड़ उठी है। बहुत गड़बड़ उठी है। चोर कोतवाल को दण्डे, ऐसा हो गया है। प्रभु! मार्ग तो यह है, हों! जिसे, मैं शरीर की क्रिया विषय की करता था, उसे मैं अब छोड़ता

हूँ। आहाहा! इसका अर्थ यह कि वह स्वद्रव्य में, परद्रव्य की क्रिया करने की ताकत (मानता है)। इसलिए वह परद्रव्य की क्रिया रोकने की भी उसमें ताकत (मानता) है। ऐई! स्वरूपचन्दभाई! ऐसा मार्ग है, बापू! भाई! आहाहा! उसने भगवान आत्मा को परद्रव्यसहित माना। आहाहा! गजब बात है, भाई! यही महामिथ्यात्व का पाप है, उसकी इसे खबर नहीं है।

भगवान आत्मा अपने अस्तित्व में शुद्धता और परिपूर्णता से अस्तित्व पड़ा है। उसमें अपूर्णता भी नहीं, विपरीतता भी नहीं और परद्रव्य का सम्बन्ध भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? कठिन लगे परन्तु विचारना, भाई! ऐसा अवसर नहीं मिलेगा, बापू! आहाहा! अरे! मनुष्य का भव चला जाता है। स्थिति पूरी हो जाती है। छोटे-छोटे बालकों का सुनते हैं न। आहाहा! देह की स्थिति पूरी हुई। आहाहा! मनुष्य के भव को हारकर चले जाते हैं। जो करने का था, वह किया नहीं। और नहीं करने का किया, ऐसा माना। आहाहा! इससे यह सब अधिक स्पष्ट करना पड़ता है, यह वाणी का और यह सब। आहाहा!

कहते हैं कि केवलज्ञानी परमात्मा को जो वाणी निकलती है, वह उनकी इच्छा से नहीं, उनसे नहीं। आहाहा! क्योंकि वाणी की दशा तो जड़रूप है। जड़रूप का आधार आत्मा कैसे हो सकता है? आहाहा! ऐसी बात समझना सूक्ष्म, बापू! भाई! इसे रह गया शल्य सूक्ष्म ऐसा अन्दर में। आहाहा! वह वाणी निकली, वह भगवान की वाणी है, ऐसा कहना व्यवहार का वचन है। अर्थात् कि निमित्तपना भगवान का था, इतना बतलाने के लिये यह वाणी है। परन्तु वाणी भगवान की है और भगवान ने की है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह आवाज उठती है, वह जड़ है। भगवान आत्मा अरूपी चैतन्यघन है। उसमें से यह आवाज उठे, वह जड़ है, रूपी है, मूर्त है। वह आत्मा में से कहाँ से उठे? आहाहा! वह वाणी, वाणी के कारण से स्वतन्त्र निकलती है, ऐसा दृष्टान्त दिया।

सूर्य प्रकाश करता है, वह प्रकाश करूँ, ऐसी इच्छा नहीं है। स्वाभाविक रीति से निकलता है। उसकी वाणी के साथ जोड़कर बात की है। भाई! यह तो तब पढ़ा तब ख्याल में था कि बात तो सूर्य के किरण की कहते हैं और वाणी को किरणरूप से सिद्ध

करते हैं। परन्तु उसे ज्ञान में उस जाति का प्रकाश है न, इतना जो निमित्त है, इससे ऐसा कहा, वह वाणी उसे प्रकाश करती है। वह उसकी किरण है, ऐसा कहा, इतना। आहाहा!

उनके शरीररूप पुद्गल, दिव्यध्वनिरूप परिणमते हैं, जिनसे मोक्षमार्ग का प्रकाशन सहज होता है। आहाहा! समझ में आया? वाणी में उस प्रकार के भाव—पर से खस और अन्तर में बस, ऐसी वाणी में ध्वनि उठती थी। समझ में आया? इससे उसे भगवान के ज्ञान की वह वाणी एक किरण गिनी। व्यवहार से कहा, भाई! आहाहा! क्योंकि उस समय वह वाणी की पर्याय ऐसी ही स्वतन्त्र अपने से उत्पन्न होती है। भगवान के कारण से नहीं। भगवान के ज्ञान के कारण से नहीं। आहाहा! ऐसा भिन्न-भिन्न स्वरूप का सत् है। उसे अतिशय (करके) वर्णन किया कि भगवान की वाणी की किरण निकली तो मोक्षमार्ग प्रकाशित हुआ। भगवान की पर्याय बाहर निकली है? पोपटभाई! यह सब समझने जैसी बात है। इसमें ऐसा का ऐसा ही घोटाला अनादि से किया है। आहाहा! यह तो शान्ति से, धीरज से तत्त्व की जो-जो स्थिति जहाँ-जहाँ जिससे है, उससे उसे जानना चाहिए। वह वाणी भगवान की है, ऐसा भी नहीं, यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया?

इस बात को सुनते ही कितने ही लोगों को तो ऐसा लगता है, इसमें धर्म कहाँ आया? अरे! बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! आहाहा! धर्म कहाँ होता है? यह विकल्प है, वाणी है, उससे हट जाये और चैतन्यस्वरूप अन्दर भगवान पूर्णानन्द का नाथ स्वयं विराजता है, वहाँ जाये तो धर्म हो। वाणी में जाये,.... वाणी में जा सके? एक सत् दूसरे सत् में प्रवेश कर सके? आहाहा! चैतन्य का सत् भगवान ज्ञानस्वरूपी अरूपी, वह वाणी के अस्तित्व के सत् में प्रवेश करे कि (जिससे) वाणी उसके कारण से निकले? समझ में आया? यह बिना भान के ऐसा का ऐसा बेचारा अनादिकाल से पड़ा है। वाडा में जन्मा हो, वह भी बिना भान के जिन्दगी निकाले, तत्त्व के भान बिना। और कुछ हमने धर्म किया, ऐसा माने। क्या हो? अरे! भाई!

मुमुक्षु : हजारों लोगों को उपदेश दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन दे? भाई! उस वाणी के योग से वाणी निकलती है।

भाई ! आहाहा ! वाणी जड़ है, अचेतन है, मूर्त है, अजीव है। उस अजीव की पर्याय को आत्मा करे ? आहाहा !

मुमुक्षु : आत्मा अजीव हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब तो अजीव हो। समझ में आया ?

यहाँ तो होशियार व्यक्ति तो बहुत काम करता है न ? गिरधरभाई ! तुम सब कार्यकर्ता कहलाते थे। वढवाण के आस-पास के। एक तो सेठिया, और कार्यकर्ता। कितना सच्चा होगा ? आहाहा ! गरीबों को कपड़े देना, भूखे को अनाज देना। प्यासे को पानी देना, रोगियों को औषध देना, स्थान से भ्रष्ट हो, उसे ओटला या स्थान देना। आहाहा ! अरे ! भगवान ! क्या करता है तू ? वह चीज़ कहाँ तेरी है कि तू दे और ले ? आहाहा ! उसे भ्रमणा हो गयी है अन्दर से। समझ में आया ? मैंने इसे पानी पिलाया। प्यास थी, उसे पानी पिलाया। पानी कोई चीज़ है कि तूने दिया ? पानी तो अजीव चीज़ है, उसे तू दे सकता है ? तू उसे स्पर्श कर सकता है ?

मुमुक्षु : देते हैं न रोज ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता है ? उसका भान नहीं इसे।

भगवान आत्मा तो अरूपी है। उसमें तो रंग, गन्ध और स्पर्श प्रभु में नहीं है। प्रभु आत्मा हों ! यहाँ। आहाहा ! उसमें रंग, रस, स्पर्श, गन्ध नहीं है। वह वर्ण, गन्ध, स्पर्श की वस्तु को स्पर्श करे ? अरूपी रूपी को स्पर्श करे और रूपी को के देने का-लेने का काम करे ?

यहाँ क्या कहा जाता है ? कि परद्रव्य को अपना मानता है, उसकी व्याख्या ही सूक्ष्म है। ऐसी बात की है। यह आता है न ? टीका में भी ऐसा आता है कि शुद्ध परमात्मा पूर्ण स्वरूप का अनुभव होकर प्रतीति होना, इस काल में वह समकित की उत्पत्ति है। उसी काल में परद्रव्य की रुचि जो है.... टीका में आया था जयसेनाचार्य की। भाई ! परद्रव्य की रुचि अर्थात् रागादि मेरे और मैंने किये और मैंने दिया और मैंने दिया, ऐसी जो परद्रव्य की रुचि है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, उसका व्यय होता है और आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म पड़े

लोगों को, हों! आहाहा! मुम्बई में ऐसा डाला हो, दस-दस हजार लोगों के बीच (तो ऐसा हो) महाराज क्या कहते हैं यह ? और मुम्बई जैसी मोहनगरी। धमाल... धमाल... धमाल.... घोड़े की भाँति लोग दौड़ते हैं। कुत्ते की भाँति भुं... भुं... करते (हों)। ऐई! रतिभाई! मुम्बई की यह उपाधि है। आहाहा!

कहते हैं कि भगवान ने जो वाणी की, ऐसा कहना वह व्यवहार है। समझ में आया ? क्यों ? कि **भगवान की दिव्यध्वनि द्रव्यश्रुत वचनरूप है,....** आहाहा! भगवान की दिव्यध्वनि, वह द्रव्यश्रुत वचनरूप है। जड़ वाणी परमाणु की पर्याय है। रजकण की, पुद्गल की, अजीव की वह दशा है। आहाहा! समझ में आया ? **वह सरस्वती की मूर्ति है,....** वाणी को। द्रव्यश्रुत को कहते हैं न। अनेकान्त में आया है न ? दूसरी गाथा में, नहीं ?

मुमुक्षु : अनेकान्तमयी मूर्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अनेकान्तमयी मूर्ति। वहाँ वाणी को भी सरस्वती कहा है। आहाहा! वास्तव में वह सरस्वती तो आत्मा का भावज्ञान-भावश्रुतज्ञान, वह सरस्वती है। जिसके द्वारा आत्मा ज्ञात हुआ, जिसके द्वारा राग का अभावरूप आत्मा का अनुभव हुआ, ऐसी जो ज्ञानी की दशा अरूपी वेदन, उसे यहाँ भावसरस्वती कहा जाता है। वाणी को निमित्तरूप से गिनकर द्रव्यश्रुत को द्रव्य सरस्वती कहा जाता है।

क्योंकि वचनों द्वारा अनन्त धर्मात्मक आत्मद्रव्य को वह परोक्ष बताती है। देखा! न्याय देते हैं। सरस्वती की मूर्ति वाणी को कैसे कहा ? कि **वचनों द्वारा अनन्त धर्मात्मक आत्मा को....** आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनेक शक्तियों रूप धर्म है। धर्मी ऐसा जो आत्मा, धर्मी अर्थात् धर्म करनेवाला, अभी यह प्रश्न नहीं है। धर्मी अर्थात् वस्तु आत्मा। उसके ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण, वे उसके धर्म हैं, वह उसका स्वभाव है, वह उसका स्वरूप है। आहाहा! उसे-ऐसे अनन्त धर्मवाले आत्मा को.... ऐसा यहाँ नहीं कहा कि ऐसे रागवाले आत्मा को, वाणी कहनेवाले आत्मा को। आहाहा! यह वचनों द्वारा। निमित्त वाणी की। अनेक धर्मोंवाला प्रभु आत्मा। धर्म अर्थात् धार रखे हुए गुण। उसमें अनन्त-अनन्त गुण हैं और अभव्य हो तो भी अनन्त गुण हैं। आहाहा!

गुण अर्थात्? शक्ति। प्रगट होने के बाद की बात है। यह अनन्त गुण स्वभाववाला आत्मा है, उसे वाणी बताती है, निमित्त रूप से। आहाहा! यद्यपि वह आत्मा स्वयं जब अपने स्वभाव को जाने, तब वाणी ने उसे बताया, ऐसा निमित्तरूप से कहा जाता है। बहुत भेद पड़े, भाई! वीतराग की सूक्ष्मता, केवली की सूक्ष्मता।

श्रीमद् में भी आता है न, सूक्ष्म बोध का अभिलाषी। महावीर का शिष्य कौन होता है? सूक्ष्म बोध का अभिलाषी। राग से, पर से भिन्न ऐसे स्वभाव के सूक्ष्म बोध का-ज्ञान का अभिलाषी। वह वस्तु को समझ सकता है और प्राप्त कर सकता है। समझ में आया? कहते हैं, वह **वचनों द्वारा अनन्त धर्मात्मक आत्मा को....** धर्म शब्द से गुण। उसमें आता है, अपने दूसरी गाथा में। समयसार में। तीसरी गाथा के अर्थ में आता है। अनेकान्त। अनेकान्तमय मूर्ति। उस अनन्त धर्मवाले को वाणी बतलाती है। आहाहा! यह वचन भी व्यवहार से है। समझ में आया? अनन्त गुण और अनन्त धर्मवाला प्रभु स्वयं जब उसे देखता और जानता है, तब उस वाणी ने अनन्त धर्मवाला आत्मा बतलाया, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? अनन्त **धर्मात्मक आत्मद्रव्य को वह परोक्ष बताती है।** द्रव्यश्रुत है न! उसे ईशारा करता है, प्रभु! तू अनन्त गुण का धनी है। तुझमें राग का अंश नहीं, वाणी और शरीर की क्रिया का करने का अंश नहीं। क्योंकि उन सबको—स्व और पर को जानने के स्वभाववाला तेरा धर्म है। समझ में आया? ऐसा वाणी बतलाती है, कहते हैं। आहाहा! 'लक्ष थवाने तेहनो कह्या शास्त्र सुखदायी।' आता है न? श्रीमद् में आता है अन्तिम।

मुमुक्षु : 'जिनपद निजपद एकता....'

पूज्य गुरुदेवश्री : 'लक्ष थवाने तेहनो....' मात्र ऐसा लक्ष्य करना। यह आत्मा चिदानन्दस्वरूप है, वह लक्ष्य बँधने के लिये यह शास्त्र की बात है। समझ में आया?

यह भी शास्त्र की वाणी है, उस काल में भी जो ज्ञान होता है, वह कहीं वाणी से नहीं होता। क्योंकि वाणी जड़ है और यहाँ ज्ञान की पर्याय चैतन्य है। यह जड़ से चैतन्य पर्याय कैसे हो? एक बात। और वह जानने की पर्याय हुई, स्वयं से हुई, वह भी एक परलक्षी ज्ञान है, वह चैतन्य का ज्ञान नहीं। आहाहा! परन्तु समझाना (हो), तब

किस प्रकार समझावे ? कि भाषा उसे अनन्त धर्मवाला आत्मा ऐसा.... तत्त्व की सूक्ष्मता और पर से पृथक्ता, यह अलौकिक बात है। प्रत्येक पदार्थ की पर से पृथक्ता और उसकी सूक्ष्मता, अलौकिक बात है ! इस सूक्ष्मता को वाणी बतलाती है, ऐसा यहाँ कहने में आता है। समझ में आया ?

केवलज्ञान अनन्त धर्मसहित आत्मतत्त्व को प्रत्यक्ष देखता है;.... वाणी परोक्ष बतलाती है, इतना कहा। क्योंकि उसके ख्याल में अभी परलक्ष्य आया है। स्व आया नहीं। वाणी निमित्त हुई और उस काल में सुननेवाले को ज्ञान की पर्याय खिलती है, वह स्वयं से खिलती है, कहीं वाणी से नहीं। वाणी का तो उसमें अभाव है। उसके भाव में से खिलती है, तथापि उस भाव का खिला हुआ ज्ञान... आहाहा! परोक्ष है। समझ में आया ? और **केवलज्ञान अनन्त धर्मसहित आत्मतत्त्व को प्रत्यक्ष देखता है;....** दूसरे प्रकार से कहें तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की पर्याय, वह आत्मा को प्रत्यक्ष जानती है। क्योंकि उसमें पर का सहारा कुछ है नहीं। आहाहा! यहाँ तो केवलज्ञान की व्याख्या की है। परन्तु नीचे सम्यग्दर्शन में भी—धर्म की प्रथम दशा में भी जो मति और श्रुतज्ञान है, वह परोक्ष नहीं। उसने प्रत्यक्ष स्व का आश्रय किया है, उसमें पर का आश्रय नहीं रहा। इसलिए प्रत्यक्ष हो जाता है। द्रव्यश्रुत ने जाना, वह परोक्ष है। अन्दर में भावश्रुत द्वारा जाना, वह प्रत्यक्ष है। ऐसा कहते हैं। क्या कहा, समझ में आया ?

वाणी से जो उसे ख्याल में आया, ऐसा कहना वह भी व्यवहार है। परन्तु वाणी का निमित्तपना और इसे ख्याल में जो आया, वह भी अभी आत्मा का परोक्षपना है। उसमें आत्मा प्रत्यक्ष हुआ नहीं। आहाहा! ऐसा व्याख्यान यह किस प्रकार का! यह तो जैनदर्शन का होगा ऐसा ? वीतरागमार्ग में ऐसा! वह तो कहता है कि छह काय की दया पालो, किसी को न मारो, भूखे को दान दो, यह करो... यह करो। ऐसी बात तो भगवान के मार्ग में सुनी है। रतिभाई! भगवान! बापू! यह सब बातें सब है वह है बाहर की। वह अन्तर की वस्तु नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

कहते हैं, यह परोक्ष बताते हैं। प्रत्यक्ष रूप की यह व्याख्या की कि द्रव्यश्रुत जो वाणी है, उस समय ख्याल आता है, वह परोक्ष है। और जब यह ज्ञान वर्तमान की दशा

वह जाना हुआ ज्ञान जो है परसन्मुख का, वह नहीं। अब इस ज्ञान के बाद की दशा स्वसन्मुख झुकती है, तब वह प्रत्यक्ष हो जाती है। समझ में आया? कितनी बातें समझना इसमें! कितने ही यहाँ दो-चार वर्ष से सुनते हैं तो हम समझ गये हैं, (ऐसा मानते हैं)। स्वरूपचन्दभाई! आहाहा! भाई! यह समझने का.... यह रास्ता अलौकिक है, बापू!

यहाँ तो कहते हैं, वाणी के काल में द्रव्यश्रुत से ज्ञान कहा-बतलाया, वह तो परोक्ष रीति से है। ऐसा कहा न? और केवलज्ञान तो प्रत्यक्ष है। और केवलज्ञान प्रत्यक्ष अर्थात् कि वाणी द्वारा उसका लक्ष्य नहीं उसे तो स्वसन्मुख के आश्रय से केवलज्ञान हुआ है। वह केवलज्ञान का उपाय भी पहले से... आहाहा! स्व के लक्ष्य के कारण से मति-श्रुतज्ञान हुआ है। वह भी सुनकर हुआ है, ऐसा है नहीं। ऐसा जो ज्ञान का प्रत्यक्षपना होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। वह धर्म की शुरुआत का अंश तब से होता है। बाकी सब बातें हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)